कर्नाटक की लोक कलाएँ

कन्नड़ मूल: प्रो. पी. के. खंडोबा

अनुवाद: प्रो. परिमला अंबेकर

कर्नाटक की लोक कलाएँ

कन्नड़ मूल : प्रो. पी.के. खंडोबा

अनुवाद : प्रो. परिमळा अंबेकर

प्रो. परिमळा अंबेकर

प्रो. परिमळा अंबेकर अनुवाद तौलनिक अनुसंधान एवं समीक्षा विधा में अपना वैयक्तिक हस्तक्षेप रखती हैं। अध्ययन अध्यापनन के साथ-साथ अनुसंधान में भी विशेष रुचि के चलते वे यू.जी.सी. के प्रोजक्टों पर काम कर चुकी हैं।

दस से भी अधिक पुस्तकों के प्रकाशन के अतिरिक्त अनेक स्तरीय पत्रिकाओं में शोधपरक आलेखों को लिखने के द्वारा हिंदी लेखन में दक्षिणी हस्तक्षेप के अपने वैचारिक आयाम को आकार देने के प्रति अधिक सजग हैं।

अपने लेखन में स्त्रीवादी मुद्दों को उठाते हुए समाज एवं संवेदना के धरातल पर व्यक्ति समानता एवं विकास की चेतना को अत्यंत ही तली के साथ प्रस्तुत करती हैं। परंपरा एवं वास्तविकता के बृहद् कैनवास पर, आधुनिकता एवं प्रगति के पदचिह्नों को उकेरने की लेखकीय निष्ठा उनमें हैं।

अनुवाद, समीक्षा के बौद्धिक कर्म को प्रतिबद्धता एवं प्रामणिकता से निभाने वाली प्रो. परिमळा अंबेकर, सृजनात्मक लेखन के कलात्मकता जुड़ाव को भी रखती हैं।

मेरा यह मानना रहा है कि, हर शास्त्रीय अध्ययन के गंभीर और गहन रास्ते अपने आखिरी पड़ाव में सांस्कृतिक चेतना और समाजीय मूल्य और आनंद के वास्तविक द्वारों को खोलते जाते हैं। तभी तो पारंपरिक शास्त्रीय अध्ययन के अपने यथार्थ और व्यावहारिक निदर्शन के मायने समझे जा सकते हैं। शिष्टबद्ध और शास्त्रबद्ध अध्ययन अपनी परिसीमा में मानवीय असंबंध के मर्म को छिपाये रखे रहते है। किसी जनपद का या लोक जीवन का शास्त्रीय या तात्विक अध्ययन ऐसा ऐनक है जिसमें प्रस्तुत लोक जीवन का शास्त्र और तत्व, मूल्य और मानवीयता के इंद्रधनुषी रंगों में तब्दील होने लगते हैं। भौतशास्त्र के थोरी ऑफ रिफ्लेक्शन की तरह!! जैसे एक सफेद किरण, अपने में छिपे सतरंगी रेशों को फैला देता है!! प्रो. पी.के. खंडोबा द्वारा प्रस्तुत लंबाणी जनजाति के दृश्य और प्रदर्शन कलाओं का शास्त्रीय और तात्विक अध्ययन ऐसा ही ऐनक है जो अध्ययन की शिष्टता के साथ-साथ पाठकों को आगे बढ़कर लंबाणी जीवन शैली और संस्कृति की रंगीनियों को देखने और अनुभव करने की चेतना जगाती है। इस महत्वपूर्ण कन्नड़ कृति के हिंदी अनुवाद के पीछे की चेतना भी यही रही है। अस्तु.....

प्रो. परिमळा अंबेकर

भूमिका

निवेदन.....

आज जनपदीय अध्ययन या लोकजीवन का अध्ययन मानव संस्कृति के अध्ययन की दृष्टि से अधिक महत्व का विषय ठहरता है। यह देशीय अभ्यास जो मानविक शास्त्र का एक अंग है अपने में मानव के समस्त जीवनानुभव को और व्यवहारों को लिया हुआ है। इसीलिए यह मानव के परंपरागत स्वरूप की अभिव्यक्ति और उसके समस्त आयामों के परिशीलन का अत्यंत प्रमुख शास्त्र बनकर उभरता है। आज लोकजीवन के अध्ययन का क्षेत्र अन्य ज्ञान शाखाओं के अध्ययन करने के स्तर को छू लिया है। इस दिशा में कन्नड़ में जनपदीय दृश्य और प्रदर्शन कला से संबंधित अत्यंत स्थूल सांदर्भिक अध्ययन हुये हैं। लेकिन हम यह जरूर इंगित कर सकते हैं कि अब तक समग्र अध्ययन की ओर का ध्यान न्यूनतम ही है। कन्नड़ भाषा में जनजातियों के दृश्य और प्रदर्शन कलाओं के दाखिलात का प्रस्तुत अन्यास अपने में पहला प्रयत्न है। इस कृतिरूपी पुष्प के खिलने की साध्यता के पीछे यह भूमिका रही है। प्रस्तुत रचना जनजातीय दृश्य और प्रदर्शन कलाओं के दाखिलात के अभ्यास क्रम में अध्ययन कर्ताओं के लिए अधिक सहायक सिद्ध होगा इसमें कोई संदेह नहीं। अगर इस दृष्टि से यह कृति सहायक ठहरती है तो मैं मानता हूँ कि मेरा श्रम और प्रयत्न सार्थक रहा है। अनेक वर्णचित्रों के साथ इस ग्रंथ को प्रकाशित करने के लिए आत्मीयता के साथ अनुमति प्रदान करने वाले मान्य अध्यक्ष साथ ही मेरे मित्र प्रो. एस.जी. सिद्धरामय्या जी के प्रति प्राधिकार के माननीय सदस्यों के प्रति साथ ही प्रशासन वर्ग के सदस्यों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करता हूँ। साथ ही व्यक्तिगत अभिरुचि दिखाकर अत्युत्तम ढंग से कन्नड़ भाषा में इस ग्रंथ को छापने वाले लिबर्टी मुद्रणालय के श्री.एस्. शिवदेव के प्रति भी धन्यवाद अभिव्यक्त करता हूँ।

डॉ. पी.के. खंडोबा

कन्नड़ अध्ययन संस्था, प्राध्यापक,

गुलबर्गा विश्वविद्यालय, गुलबर्गा

मिलिबौ अंगि लगाइ.....

अपनी आँखों के सम्मुख दो वास्तव्य हैं। एक-जनांगिक संस्कृति के स्मृति संचय के समान उपस्थित जनपद पुराण कथनों को पीढ़ी दर पीढ़ी से, मुख से मुख तक स्मृतियों के वाहक रूप में सृजनशील ढंग से बचाकर लाने वाला मौखिक लोक। यह लोक तो अब तक हमारे मध्य से अगोचर होता हुआ लोक है। दूसरा-जीवन के सभी ज्ञान शाखाओं के सूचना भंडार को अपने सूच्यांक में दाखिला कर लेते हुये, मनुष्य के सृजनश्रम की कालदीर्घता को अपने अणुक्षणों के हस्वत्वता पर ला खड़ा करके, दैत्य साधना से इठलाता हुआ गणक लोक। दिन प्रतिदिन किसी भी प्रकार की गिनती के हाथ न आने वाले वेग से चल रहा यह ज्ञान जगत् है।

मौखिक सृजन प्रतिभा का प्रतीक ठहरती है सिरियज्जी (लोक साहित्य का भंडार मानी जाने वाली सिरियज्जी काडुगोल्लर समुदाय की है। असंख्य कन्नड़ लोक गीत एवं कथन गीतों के मौखिक परंपरा का आधार रही सिरियज्जी कर्नाटक के चळळकेरे तालूका में बसे यळगेरे ग्राम की है। सन् अप्रैल 2009 में अपनी 97 की आयु में सिरियज्जी का निधन हुआ)। गणक ज्ञान के रफ्तार का प्रतीक है शकुंतलादेवी। सिरियज्जी केवल एक स्मृति मात्र नहीं है। वह एक सृजन प्रतिभा है। वह भूत नहीं, वर्तमान है। परंपरा को पूरी तरह पचाया हुआ सृजन है। वह केवल व्यक्ति नहीं, वह एक समुदाय की प्रज्ञा बनती है। शकुतंला देवी की ज्ञानशक्ति 2 x 2 के हिसाब-किताब का अगाध स्मृतिकोश है। यह तांत्रिक नैपुण्यता और परिकल्पना के अद्भुत् समीकरण की ज्ञानशक्ति है। यहाँ परिभाषित होने वाला अत्यंत महत्वपूर्ण मुद्दा यह है कि इनमें पहला भावप्रभा के सृजन का हल है। दूसरा बुद्धि संचय के तर्क का हल है। आज इन उभय वास्तवों के मध्य में अक्षर लोक की गतिविधियाँ, अनेक चुनौतियों, का अनेक संश्लिष्टों का आमना सामना कर रहा है।

ज्ञान का शोध जैसे जैसे विस्तृत होता जाता है अनेक आतंक प्रतिदिन के भय बनकर हमारे सामने खुलते जाते हैं। सूचना तंत्रज्ञान के रफ्तार के आक्रमण के दबोच में, जाल के अनेकानेक भाषाएँ, ओझल हो जाने के आतंक को अनेक भाषतज्ञ एक गंभीर समस्या के रूप में संसार के सम्मुख रखे हुये हैं। इस आतंक के आवरण में अपनी भाषा कन्नड़ की स्थिति क्या रहेगी? आज अपने आप से पूछने का प्रमुख प्रश्न यह है। भाषा केवल संवहन

का संकेत मात्र नहीं है। वह समुदाय की संस्कृति, नागरिकता, सृजनशक्ति, बुद्धि भावनाओं के संलग्नितता का प्रतीक है। वह समुदाय का निश्वास है। ऐसी भाषा का लुप्त होने का अर्थ है, जीवन के सभी क्षेत्रों के प्रमुख व्यवहारिकता से उस भाषा को दूर रखना। प्रशासन, शिक्षा, संपर्क माध्यम के स्थान से उस भाषा को ओझल कर देना। इसका तात्पर्य है, किसी अधिाक विशाल भाषिक समुदाय को, ज्ञान के प्रकाश से दूर रखना। जागतिक जीवन के सुख सुविधाओं से उसे वंचित करना। ऐसे अनेक आघातकारी आतंकों के वातावरण, में आज कन्नड़ के अक्षर लोक को, अपनी गति को पहचानने की जरूरत है।

हजारों वर्ष के इतिहास में, सांस्कृतिक, राजनीतिक दबदबा का समर्थ ढंग से सामना करते हुए बढ़ती आयी कन्नड़ भाषा के लिए कन्नड़ जीवन के लिए ये आतंक और आघात तो घर के मेहमान हैं, ऊधो-माधो हैं। कुरितोददेयुं काव्य प्रयोग परिणत मतिगळ् (शिक्षा का ज्ञान न होने पर भी काव्य प्रयोग में परिणती हासिल किये हुये) से आरंभ होकर, हितमित मृदुवचन (बानी मीठी शर्करा), नुडि टठडढण (बोल टठडढण), मातु जोतिर्लिग (बोल ही जोतिर्लिग है) हलगे बळपव पिडियदोंदग्गळिकेयल्लि (मसी कागद छुये नहीं कलम गहीं न हाथ) जैसे पाया वैसे गाये जाने वाले अनेक काल के अनेक प्रकार के अभिव्यक्ति साधकों नें, मार्ग (शास्त्रीय) एवं देसीयता (जनपदीय) के समाहार्य में, अपने सम्मुख उभरे आतंक और आघतों को पचाकर कन्नड़ का दिया जलाये रखे हुये हैं। इसका अर्थ यह ठहरता है कि, कन्नड़ समुदाय, अपनी-अपनी कालसीमा में अपने समय के सवालों के प्रति योग्य विवेक बरतते हुये सृजनशील बना रहा है। लेकिन आज का यह आतंक। पिछले किसी भी आक्रमण से भयानक है। इस भयानकता का सामना करने का और आरोग्यकर ढंग से उसे पचाकर बढ़ने की सत्वशक्ति भाषा के पास होने पर भी भाषिक समुदाय के पास इच्छाशक्ति का अभाव उठकर दिखने वाला जाहिर अंश है। यह इच्छाशक्ति कहीं बाहर से आमद की जाने वाली रसद नहीं। जीवन को रूपायित करने वाली प्रभुत्वता है और उस प्रभुत्वता को चयन करने वाले जन समुदाय के भीतर, अरिवे गुरु (ज्ञान ही गुरु है) बनकर चित्रित होने वाली विशेषप्रज्ञा भी है। इस प्रज्ञाविशेष को सिरियज्जी के समुदाय को दरकिनार न करते हुये, समीकरण की ज्ञानशक्ति को चौरंगी पर बिठाना है! चौक पूरना है!! सामाजिक न्याय को, संस्कृति की रूचि विशेषता को परिभावन में लाकर जंगमशील बनना है। अतिरेकों के आवांतरों से समुदायों की रक्षा करने की शक्ति अक्षर लोक के पास है।

इसीलिए, अक्षर लोक की आवश्यकता यह है कि वह सृजनशीलता को बड़े ड़ी जागरुकता से बचाये रखते हुये, ज्ञान के नये विस्तारों के सम्मुख अपने आप को खोलते जाये।

विज्ञान के नये-नये आविष्कारों के प्रति प्रतिस्पंदित होते हुये बढ़ने वाली भाषा की सृजनशीलता प्रकाशित होती है। वैज्ञानिक विचार सृजनशील भावों में जब अभिव्यक्त होते हैं, तब उसे मानवीयता की आभा प्राप्त होती है। नये समय की संवेदनाओं के प्रति, वैज्ञानिक विचारों के प्रति तात्विक तर्कदीप्तियों के प्रति खिलने वाला उसका गुण, जीवंत भाषा के लिए बड़ी शक्ति बनकर ठहरता है। समय की आवश्यकताओं के प्रति स्पंदित होने वाला उसका गुण कन्नड़ भाषा की अगाध शक्ति है। विश्व स्तर पर विस्तरित हो रहे सभी ज्ञान शाखाओं के पारिभाषिक शब्द संपदा को स्वीकारते हुवे, कन्नड़ भाषा को आज, अपने माध्यम से विषय ज्ञान को पचाकर, विकसित होना है। कन्नड़ ज्ञान चेतनाओ की इच्छाशक्ति, इस दिशा में अधिक क्रियाशील बनने की आवश्यकता है। अल्लमप्रभू का एक वचन इस प्रकार है-

हिंदण अनंतवनु मुंदण अनंतवनु

वदुं दिन वळकोंडित्तु नोडा

वंदु दिनवनोळकोंडु माताडुव महांतन

कहुं बल्लवरारय्य

आद्यरू वैद्यरू अनंत हिरियरू कालदंतुवनरियदे

अंते होदरू काणा गुहेज्वरा।

पिछले के अनंत से अगले के अनंत से

एक दिन मिलेगा अंगलगाकर देखो

एक दिन मिलकर बतियाते महांत को

जाना है पहचाना है कौन

आदि जन वेदजन अनंत पूर्वज, काल का अनंत जाने न

यूँ ही चलेगये देखो गुहेज्वरा।

जगत के ज्ञान से पिछली परंपरा की अपारता जुड़ी है। अगले भविष्य की अनंतता है। वर्तमान में ये उभय संलग्नित भाव में जब सृजनशील बनते है तब वह अमिट उक्ति बनती है। यह उक्ति जोतिर्लिंग स्वरूपी होती है। सच्चे ग्रंथ, उक्ति के ज्योतिर्लिंग बनने की संस्कृति संचय के ज्ञान दीपक के समान हैं। ज्ञान को केवल पंडितमान्यों की ही बपौती न बनाकर उसे जनसामान्यों का जीवन बनाना अक्षरलोक का उद्देश्य बनना चाहिए। ज्ञान परंपराओं को अनुसंधान के हल पर जोतकर आत्मावलोकन के अंतर्मुखीदर्शन के प्रकाश में सत्य को मनोनीत करना है। पाये हुये सत्य के प्रकाश में वर्तमान का मार्ग खोलकर भविष्य के दर्शन की संभावना से लक्ष्य की ओर कदम बढ़ाना चाहिए। जीवन का जब यह गतिशील गुण बनता है तब अतिरेकों के लिए कोई जगह नहीं बचती।

यह वैश्वीकरण का युग है। इस प्रक्रिया की रफ्तार जितनी अपरिमित है उतनी ही वह अपायकारी भी है। जागतीकरण के आक्रमण में एक संस्कृति एक जीवनशैली एकभाषाधिपत्य के प्रति विश्व को खुला छोड़ने से होने वाला दुष्परिणाम है- जीवन वैविध्यता के बहुमुखी संस्कृति की मौत। अतिरेक की विपरीतता के अधीन होकर जीवन को बंजर बानाने और असमानता के परिमाण को तीव्रतर बनाने के अपायों से इन समुदायों की रक्षा करने की अनिवार्यता ही आज की आपात् स्थिति है। इस आपात् स्थिति के सन्निवेश में, विवेक का मार्ग दिखाकर, अतिरेक पर लगाम कसकर, संस्कृति, जीवन, मानवकोटि के संरक्षण की शक्ति अक्षर लोक के पास है। यह अक्षरलोक, एकरूपी गुणों से युक्त, गणकीकरण के एकाधिपत्य से भी, बहुरूपी गुणों की प्रतिभासंपन्नता से दीप्त जगत की वैविध्यता का भी संरक्षण करता है। यह अक्षरलोक वैविध्यता में निहित सृजनशीलता को विकसित करता है।

ग्रंथ अक्षरलोक के मूर्तस्वरूप होते हैं। अमूर्त ज्ञानसंपत्ति को धारण किये हुये शब्दरूप हैं ग्रंथ। शब्द का तात्पर्य अर्थ की केवल अभिधावृत्ति में ही ठहरना नहीं है। उसे व्यंजना व्यापार में अनुभाविक बनना है। यह व्यंजना व्यापार, बुद्धि एवं भावों के विद्युदालिंगन प्रभा का प्रतिफलन है। इसी कारण ग्रंथ जितनी मात्रा में नागरिकता के संचयित फल बनते है उसी प्रमाण में संस्कृति को निरंतरता से उज्जीवित करने वाले धातु द्रव्य भी ठहरते हैं।

कन्नड़ प्राधिकार, कर्नाटक भर में पुस्तक संस्कृति को विकसित करने के सदुद्देश्य से आरंभ हुआ एक संस्कृति केंद्र है। वाचन अभिरुचि को बढ़ाने के साथ-साथ पुस्तकोद्यम को अरोग्यकर ढंग से पोशित करना इस

प्राधिकार की जिम्मेदारी बनती है। प्राधिकार युवक समुदायों में पढ़ने की अभिरुचि को बढ़ाने के लिए वाचनाभिरुचि कार्यशालाएं चलाता है। प्रकाशकों लेखकों और पाठकों के बीच में चिंतन गोष्ठियों को चलाता है। इसके साथ ही दूसरी आद्यताओं में पुस्तकों के प्रकाशन की जिम्मेदारी भी उठाता है। शैक्षणिक शिष्टता में अध्ययन करने वाले परामर्शन ग्रंथों के साथ-साथ जनसामान्यों के लिये आवश्यक ज्ञान को बाँटने वाले पुस्तकों के प्रकाशन का भार भी प्राधिकार उठाता है।

'लंबाणी जनजाति के दृश्य एवं प्रदर्शन कलाएँ' डॉ. पी.के. खंडोबा जी का लिखा ग्रंथ है। लंबाणी समुदाय के पहनावे वस्त्र आभूषण नृत्य केशालंकार वाद्य और उनके तांडा के मकानों का वास्तु विन्यास देवी देवताओं उत्सव पर्व जत्रा इत्यादि आचरणों के विवरणों की ली हुयी यह पुस्तक एक उपयुक्त माहिती प्रदान करने वाला ग्रंथ है। विषय विवरणों के साथ-साथ चित्र भी दिये जाने के कारण यह एक उपयुक्त दस्तावेजी माहिती प्रदान करता है। एक समय में घुमक्कड़ी जनांग रही लंबाणी जनजाति अपना ही घर आवासों को बाँधकर जीवनयापन करते रहने पर यह समुदाय भी आज आधुनिकता की हवा वेन आमने -सामने खड़ी है। जीवन शैली में सहजता से होने वाले बदलाव एक अनिवार्य गति है। इस स्थित्यंतर की भूमिका में, सांप्रदायिक विधि विधान, विश्वास, व्यवहारों के संक्षिप्त विवरणों के साथ, विषय की माहिती प्रदान करने के ढंग से डॉ. पी.के. खंडोबा जी ने इस ग्रंथ की रचना की है। उन्हीं के शब्दों में अगर कहें तो- "यह समग्र चित्रण नहीं है। इस क्षेत्र में काम करने के लिए उत्सुकों के लिए यह प्रेरणा और प्रोत्साहन प्रदान करने वाली एक विषयसूची ग्रंथ है।" इस कृति को लिखकर देने वाले डॉ. पी.के खंडोंबा जी के प्रति, प्राधिकार के सदस्य बंधुओं के प्रति, मुद्रण करने वाले श्रमिक बंधुओं के प्रति, प्राधिकार की ओर से आत्मीय कृतज्ञता अर्पण करता हूँ।

प्रो. एस्. जी. सिद्धरामय्या

अनुवाद की चेतना

मुझे लगता है, हरेक मनुष्य के जीवन काल के स्मृति खंडों में, सांस्कृतिक स्मृतियां अपना गंभीर और अधिक गहरा हस्तक्षेप रखती हैं। उसके बचपन की ये स्मृतियाँ, संस्कार भावी जीवन के लिए दिशा और दृष्टि दोनों प्रदान करते हैं। भारतीय समाज अपने मिट्टी के हरेक जीव को ऐसे ही संस्कार और स्मृतियों का आगार प्रदान करते आया है, जिससे व्यक्ति मानविक समाज के अंर्तसंबंधों की तरलता को, मानवीय प्रेम की ऊष्मता को सहजता से अपनी चेतना में रचा बसा पाता है। भारतीय समाज के हरेक व्यक्ति के जीवन के इन्हीं स्मृतियों और संस्कार? के खंडों में लंबाणी संस्कृति एक ऐसा सुंदर और स्नेहिल और आकर्षणीय खंड है, जिसके संस्कार और संपर्क, बचपन के रंगीनियों को संजोता तो है ही, साथ ही आधुनिक जीवन की शुष्कता और नीरसता में अपनी रंगीनियों की इंद्रधनुषी आभा से, चेतना और आनंद के भाव को भी घोलता है। लंबाणी स्त्री और पुरुषों की वेश भूषा, उनकी भाषा, लंबाणी स्त्रियों के रंगीन घाघरे, बेलबूटेदार ऐनक जड़ी चोलियाँ, केशों में गुँथे काँसे चाँदी के लटकने, बाहों में पट्टीदार सफेद-सफेद चूड़ियाँ दमक और चमक से भरी प्रेमिल चेहरे, सुरीली होली के गीत गीतों, में रचे बसे हास्य विनोद के पटाखे आदि वे ही लंबाणी जनजाति के स्मृतियों और संस्कारों के खंड है, जो इस कृति के अनुवाद के पीछे की मेरी चेतना रही है।

मेरा यह मानना रहा है कि हर शास्त्रीय अध्ययन के गंभीर और गहन रास्ते अपने आखिरी पड़ाव में, सांस्कृतिक चेतना और समाजीय मूल्य और आनंद के वास्तविक द्वारों को खोलते जाते हैं। तभी तो पारंपरिक शास्त्रीय अध्ययन के अपने यथार्थ और व्यावहारिक निदर्शन के मायने समझे जा सकते हैं। शिष्टबद्ध और शास्त्रबद्ध अध्ययन अपनी परिसीमा में मानवीय असंबंध के मर्म को छिपाये रक्खे रहते हैं। किसी जनपद का या लोक जीवन का शास्त्रीय या तात्विक अध्ययन ऐसा ऐनक है जिसमें प्रस्तुत लोक जीवन का शास्त्र और तत्व मूल्य और मानवीयता के इंद्रधनुषी रंगों में तब्दील होने लगते हैं। भीतशास्त्र के थोरी ऑफ रिफलेक्शन की तरह!! जैसे एक सफेद किरण अपने में छिपे सतरंगी रेशों को फैला देता है!! प्रो पी.के. खंडोबा द्वारा प्रस्तुत लंबाणी जनजाति के दृश्य और प्रदर्शन कलाओं का शास्त्रीय और तात्विक अध्ययन ऐसा ही ऐनक है जो अध्ययन की शिष्टता के साथ-

साथ पाठकों को आगे बढ़कर लंबाणी जीवन शैली और संस्कृति की रंगीनियों को देखने और अनुभव करने की चेतना जगाती है। इस महत्वपूर्ण कन्नड़ कृति के हिंदी अनुवाद के पीछे की चेतना भी यही रही है।

अस्तु .....

प्रो. परिमळा अंबेकर

हिंदी विभाग,

गुलबर्गा विश्वविद्यालय, गुलबर्गा

अनुक्रमणिका

भूमिका	4
मिलिबौ अंगि लगाइ	5
अनुवाद की चेतना	10
अध्ययन का स्वरूप उद्देश्य और विस्तार	13
लंबाणी जनजाति की दृश्य कलाएँ (Visual Arts)	16
लंबाणी जनजाति की प्रदर्शन कलाएं (Performung Arts)	56
आधुनिक परिणाम एवं परिवर्तन का स्वरूप (Impact & Changes)	78
समारोप	86
अनुबंध - 1 : प्रमुख निरूपकों की सूची	88
अनुबंध - 2 : ग्रंथसूची (Bibliography)	89

अध्ययन का स्वरूप, उद्देश्य और विस्तार

लंबाणी अथवा बंजारा जन भारत भर में बसे हुये हैं। वे प्रादेशिकता की दृष्टि से भिन्न-भिन्न व्यवसायों में जुटे हुये होने के कारण, उन्हें उन उन प्रदेशों में अलग-अलग नामों से पहचाना जाता है। पहले वे घुमंतू होने के कारण आज दल या टोली में बसे हुये ये लंबाणी लोग समस्त भारत में गोरमाटी के नाम से अपने आप को पहचानते हैं। विशिष्ट संस्कृति एवं परंपरा को लिये हुये ये जन बंजार, लंबाणी, लंबाडी, सुकाली, लमाणि इत्यादि नामों से पुकारे जाते रहे हैं। अपनी वेशभूषा, आभूषण, आचार-विचारों से प्रत्येकता को बचाये रखकर नगरों से दूरस्थ प्रदेशों में अधिकतर पहाड़ गुफा कंदराओं में अपना ही अलग से तांडाओं का निर्माण करके अपनी संस्कृति को बचाते आये हुये हैं। शतमानों के बीत जाने पर भी ये जन यथा स्थिति में रह रहे हैं।

स्वातंत्रपूर्व संदर्भ में इस देश में जब वाहन आदियों का सौकर्य नहीं था तब इन बजौरा लोगों ने, देश विदेशों से जंगल झंखाड़ों के रास्ते अपने मवेशियों पर खाद्य पदार्थों का रसद लादकर उसे ले आकर भारतीय जीवों का संरक्षण किया है। देश की स्वतंत्रता के लिए लड़कर मरने वालों में ये भी शामिल रहे हैं। ऐसे देशभक्त समाज पर कलंक लगाने हेतु अंग्रेज सरकार ने इन्हें अपराधी जनजाति (Criminal Tribe) के नाम से परिगणित करने के परिणाम से ही इनकी सामाजिक शैक्षणिक और सांस्कृतिक अभिवृद्धि कुंठित हुयी। इस तरह से अलक्षित हुये इन लोगों के आचार-विचार परंपरा संप्रदाय विवाह-उपनयन साथ में रीति-नीतियाँ बहुत ही विशिष्ट बने हुये हैं। इनके द्वारा बोली जाने वाली भाषा की न कोई लिपि है और न ही उनका लिखित साहित्य ही उपलब्ध है।

लांबाणी जनजाति के विविध चेहरे से संबंधित अब तक के हुए अध्ययनों का अगर हम परिशीलन करेंगे तो, हम यह निश्चित तौर पर कह सकते हैं कि इस जनजाति के दृश्य एवं प्रदर्शन कलाओं के दस्तावेजों का संग्रह और अध्ययन हुआ नहीं है। साहित्य संस्कृति और भाषा से संबंधित कुछाध संभावित अध्ययन में प्रासंगिक तौर पर यहाँ-वहाँ दृश्य और प्रदर्शन कला से संबंधित कुछाध स्थूल विवरणों का पाया जाना हम देखते हैं। संस्कृति के अध्ययन में सांस्कृतिक परिवर्तन एक बहुत बड़ा अंश है। जनजातियों को नजरअंदाज करके भारतीय संस्कृति की परिपूर्णता को मापा नहीं जा सकता। संस्कृतियों के निर्माण में इन जनजातियों के विशिष्ट पात्र के होने को हम भुला